इकाई-V

पुराण

परिभाषा एवं स्वरूप

'वेदा खिलो धर्ममूलम्' इस उक्ति के अनुसार धर्म का मूलस्त्रोत वेद को माना गया है। वैदिक वाङ्मय भारतीय संस्कृति का आधार है। परन्तु वेदों के गूढ विषय को जनसाधारण तक पहुंचाने का श्रेय पुराण वाङ्मय को ही प्राप्त है। शिव पुराण में कहा गया है कि-

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबंहयेत्।

विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

अर्थात् इतिहास और पुराण वेदों का उपबंहण करने (व्याख्या करने) वाले ग्रन्थ हैं जिनके कारण वेदों को भली प्रकार से समझा जा सकता है।

अतः प्राचीन भारतीय वाङ्मय में पुराणों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वेद के पश्चात् पुराण ही भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार है। इसलिए इतिहास पुराण को प चम वेद स्वीकार किया जाता है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पुराण क्या है। उसका स्वरूप क्या है। यह जानने के लिए पुराण की परिभाषा जानना जरूरी है। परिभाषा वस्तुतः वह कथन अथवा व्याख्या है जिसके आधार पर किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। यहां भी पुराण का स्वरूप निर्धारित करने के लिए उसके विभिन्न लक्षणों व निरुक्तियों के आधार पर उसका पारिभाषित स्वरूप प्रकाशित किया जाएगा।

आचार्य पाणिनि तथा यास्क के अनुसार :- प्राचीन काल में होन वाला पुराण कहलाता है। यद्यपि पाणिनि व्याकरण के अनुसार पुरा शब्द से ट्यु प्रत्यय करने पर तथा तुट आगम होने पर पुरातन शब्द निष्पन्न होता है तथापि आचार्य पाणिनि ने स्वयं पुराण शब्द का प्रयोग किया है (पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु)। इससे यह सिद्ध होता है कि भले ही पाणिनि की सूत्र परम्परा तुट आगम् सहित पुरातन शब्द को सिद्ध करे किन्तु आचार्य के स्वयं पुराण शब्द के प्रयोग करने से निपातनात् यह शब्द भी व्याकरण सम्मत ही है। आचार्य यास्क ने पुराण शब्द को पारिभाषित करते हुए उसका निर्वचन इस प्रकार दिया है। पुरानवं भवति अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है। वह पुराण कहलाता है। वायु पुराण की परिभाषा के अनुसार वह पुराण है जो प्राचीनकाल में भी जीवित था। (पुरा अनतीति) पद्म पुराण के अनुसार जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है (पुर्री परम्परां वष्टि कामयते) ब्रह्मण्ड पुराण, पुराण शब्द को परिभाषित करते हुए लिखता है-पुरा एतत् अभवत् अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ था इस तथ्य को प्रकट करने वाला शास्त्र पुराण कहलाता है। पुराण की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि पुराण शास्त्र का वर्ण्य विषय का प्राचीन काल से सम्बन्ध है। यही कारण है कि पुराण शब्द के साथ इतिहास शब्द का भी प्रयोग होता है। छान्दोग्य उपनिषद् में एक प्रकरण आता है जहां ऋषि सनत कुमार अपने आश्रम में विद्या पढ़ने की इच्छा से आये हुए नारद से जब यह पूछते हैं कि तुमने क्या-क्या पढ़ा हुआ है तो तब नारद अपने अधीत विषयों में जिन शास्त्रों को गिनवाते हैं उनमें पांचवे वेद इतिहास पुराण का भी उल्लेख करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उस काल में इतिहास और पुराण संयुक्त शास्त्र के रूप

में प्रसिद्ध थे, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं निकालना चाहिए कि इतिहास और पुराण दोनों एक ही शास्त्र हैं क्योंकि पुराणों में आगे चलकर इतिहास शब्द के बहुशः प्रयोग ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इतिहास और पुराणों में भिन्नता है काल्पनिक कथा या आख्यान को पुराण की श्रेणी में रखा जाता है। जबकि वास्तविक घटना को इतिहास कहा जाता है। यतः पुराण शास्त्र में काल्पनिक घटनाओं, आख्यानों के साथ साथ वास्तविक घटनाओं का वर्णन भी मिलता है। अतः पुराण शब्द के साथ इतिहास शब्द जुड़ गया है।

पुराण शास्त्र के विस्त त स्वरूप को जानने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी परिभाषा अथवा लक्षण को भी विस्त त रूप से जाना जाए। पुराण के साथ पांच लक्षणों का घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् पुराण शास्त्र में वर्णित विषयों पर आधारित उसके स्वरूप को पाँच लक्षणों से भली प्रकार समझा जा सकता है। पुराण के पंच लक्षणों को प्रकट करने वाला यह श्लोक है :-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वतराणि च।
वंश्यानुचरितं चेति पुराणं प च लक्षणम्।।

अर्थात् स ष्टि, प्रलय, राजवंशों और मन्वन्तरों का वर्णन तथा राजवंशों के विभिन्न विषयों और घटनाओं का वर्णन ये पुराण शास्त्र के पाँच लक्षण हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिन शास्त्रों अथवा ग्रन्थों में स ष्टि की उत्पत्ति प्रलय के साथ-साथ राजवंशों का उल्लेख स ष्टि काल की गणना और राजवंशों सें जुड़ी हुई विभिन्न घटनाओं का विस्तार से वर्णन होता है ग्रन्थ अथवा शास्त्र पुराण कहलाते हैं।

पुराण के लक्षण से सम्बन्धित उक्त श्लोक प्राय सभी पुराणों में उपलब्ध होता है। पंच लक्षण शब्द पुराण का इतना अनिवार्य अंग है कि अन्य ग्रन्थों में यह शब्द पुराण के लिए यथावत् स्वीकार किया गया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र की जय मंगला नामक व्याख्या में पुराण के प च लक्षण को कुछ भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। वहां लिखा है स ष्टि-प्रव त्ति संहार धर्म मोक्ष प्रयोजनम्। ब ह्म भिर्विविधै प्रोक्तं पुराणं प च लक्षणम् अर्थात्-

सुष्टि उसका विस्तार अंत में संहार साथ ही धर्म और मोक्ष आदि विषयों पर विभिन्न प्रकार से विचार करने वाला शास्त्र पुराण कहलाता है।

श्रीमद्भागवतपुराण में पुराण के १० लक्षणों का भी उल्लेख है :-

सर्गश्चाथ विसर्गश्च व त्ति रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।।

अर्थात्

सर्ग, विसर्ग, व त्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु तथा अपाश्रय ये पुराण के दस लक्षण हैं। इसमें सर्ग का अभिप्राय स ष्टि से है। विसर्ग से मैथुनी स ष्टि का कथन है व त्ति का अर्थ जीवों के जीवन का निर्वाह करने की सामग्री। रक्षा के लिए वर्णन आता है जो भिन्न-भिन्न समय पर धर्म की रक्षा के लिए अवतार लेते हैं। अन्तराणि शब्द से मनवन्तर ग्रहीत होते हैं जिनके द्वारा स ष्टि की काल गणना की जाती है। वंश के अन्तर्गत राजवंशों के विभिन्न चरित्रों का वर्णन, संस्था के अन्तर्गत इस स ष्टि के संहार का वर्णन हेतु के अन्तर्गत जीवों के विभिन्न प्रारब्धों का वर्णन जो उसके जन्म का कारण बनते हैं अन्त में उपाश्रय के अन्तर्गत तुरीअ तत्त्व ब्रह्म का वर्णन जिन ग्रन्थों में किया जाता है वे पुराण हैं।

इस प्रकार पुराण की उपर्युक्त परिभाषाओं व लक्षणों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में घटने वाली विभिन्न घटनाओं को आख्यानों तथा उपाख्यानों के माध्यम से स्पष्ट करके हमें स ष्टि, प्रलय, राजवंश, उनका चरित्र, साथ ही दार्शनिक द ष्टि से स ष्टि की उत्पति में जीवों के प्रारब्ध आदि के साथ-साथ जिन ग्रन्थों में तुरीय तत्त्व ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन उपलब्ध होता है वे पुराण

कहलाते हैं।

पुराण के निर्माता

जिस प्रकार समग्र वेदों के मंत्र अपनी मूलावस्था में अविभक्त रूप में एक ही साथ मिले-जुले थे, उसी प्रकार पुराण भी एक ब हत्संहिता के रूप में सम्मिलित थे। वेदों के चतुर्धा वर्गीकरण की भांति पुराणों का भी पंचम वेद के रूप में अलग विभाजन उनकी रचना के बहुत बाद हुआ और पुराण-ग्रंथों का अध्ययन करने पर इस सत्य का भी स्पष्टकरण होता है कि वेद-वर्गयिता व्यास के उपाधिधारी ऋषि-महर्षि ही पुराणों के भी विभाजक थे।

व्यास या वेदव्यास एक पदवी या अधिकार का नाम था। जब भी जिन ऋषि-मुनियों ने वेद-संहिताओं का विभाजन या पुराणों का संक्षेप, संपादन अथवा प्रतिसंस्करण किया वे ही उस समय व्यास या वेदव्यास की उपाधि से सम्मानित किए गए। किसी समय वशिष्ठ और किसी समय पाराशर या शक्ति आदि भी व्यास कहे गये। इस अट्ठाईसवें कलियुग के व्यास कृष्णद्वैपायन थे। उनके द्वारा रचित या प्रकाशित ग्रन्थ ही आज पुराण नाम से प्रचलित हैं।

संप्रति उपलब्ध होने वाले ब्रह्माण्ड, विष्णु और मत्स्य आदि पुराणों के अध्ययन से विदित होता है कि उनका प्रतिपाद्य विषय पांच अंशों में विभक्त है : सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित। ये पांच बातें पुराणों का प्रतिपाद्य विषय हैं।

पुराण-ग्रन्थों में प्रणयन या उनके प्रणेताओं के सम्बन्ध में 'विष्णुपुराण' में एक रोचक कथा वर्णित है, जिसके अनुसार भगवान् वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि आदि के साथ-साथ पुराण-संहिता की भी रचना की थी और उसका अध्यापन अपने सुयोग्य सूतजातीय लोमहर्षण नामक शिष्य को कराया था। लोमहर्षण ने अपने कश्यपवंशीय तीन सुपात्र शिष्यों-अकृतव्रण, सावर्णि एवं शांशपायन-को पुराणों का महान् ज्ञान दिया और इन तीनों के मूल संहिता के आधार पर तीन पुराण-संहितायें और तैयार की। आगे चलकर इन्हीं की शिष्य-परम्परा ने अष्टादश महापुराणों की तथा अनेक उपपुराणों की रचना की। 'ब्रह्मपुराण' इस प्रसंग में सबसे पहले रचा गया।

'विष्णुपुराण' के इस प्रसंग में दो प्रामाणिक बातों का पता चलता है। पहली बात तो यह कि वेदव्यास ने पुराण-संहिता का संग्रह कर उसको क्रमबद्ध किया और दूसरी बात यह कि उस संग्रहकार के बहुत बाद में उसकी शिष्य-परम्परा ने अष्टादश महापुराणों या दूसरे उपपुराणों की रचना की।

'मत्स्यपुराण' के एक प्रसंग से विदित होता है कि आदि में केवल एक ही पुराण संहिता थी। संभवतः, 'विष्णुपुराण' के पूर्वोक्त वचनानुसार, व्यास ने उसी पुराण संहिता की दीक्षा लोमहर्षण को दी। इस बात का 'शिवपुराण' में भी विस्तार से वर्णन है। उसमें लिखा गया है कि कल्प के अन्त में केवल एक ही पुराण था, जिसे ब्रह्मा ने मुनियों को बताया। उसके बाद व्यास ने अनुमान लगाकर यह तय किया कि इतना बड़ा ग्रन्थ मनुष्यों की मेधा में न समा सकेगा। अतः उन्होंने उस चार लाख श्लोक परिमाण की ब हत्-संहिता को अठारह भागों में विभक्त किया। इन अठारह पुराणों का प्रवचन सत्यवती जी के पुत्र व्यास ने ही किया। एक मूल-संहिता से अष्टादश पुराणों के विभाजन एवं प्रवचन की यही बात 'देवीभागवत', 'वराहपुराण', 'पद्मपुराण' आदि ग्रन्थों में भी एक-जेसे रूप में देखने को मिलती है।

इन सब एक-जैसे पुराण-प्रसंगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मा ने वेदों की ही भांति पुराणविद्या का स्मरण किया और तब परम्परया वह ज्ञान व्यास तक पहुचा। व्यास ने लोक में पुराण-विद्या का महान् ज्ञान प्रकाशित किया। ऋषियों ने ब हद् पुराण-संहिता के पहले तो तीन भाग किए और बाद में अठारह। बार-बार उनकी कथाओं में उलट-फेर होता गया, अतः उनकी कथाओं में न्यूनाधिक्य, मत-वैभिन्न्य, सम्प्रदाय-पक्षपात और प्रक्षेप आदि जुड़ते गये। किन्तु प्रश्न हो

सकता है कि यदि पुराण भी वेदों जितने सनातन हैं तो वैदिक संहिताएं भी तो अनेक ऋषि-मुनियों के हाथ से होकर आज हम तक पहुंची है। फिर उनके संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन की बात तो किसी से नहीं कही ? उसका कारण यह था कि वेदों के पद, क्रम, घन, जटा, माला आदि पाठ तथा पातिशाख्य, चरणव्यूह, निरुक्त, शिक्षा और कल्प आदि शास्त्र ऐसे कवच थे कि जिनमें आबद्ध होकर उनमें उलट-फेर आदि की कोई संभावना ही नहीं हुई, और इसीलिए भविष्य में भी ऐसी कोई आशंका नहीं है। यही कारण है कि जहां वेदमन्त्रों की गति-संगति एक-जैसी है, वहां पुराणों की अनेक बातों में एक-जैसी गति और संगति स्थापित करने में कठिनाई होती है।

अष्टादश महापुराणों के अध्ययन से विदित होता है कि उनका विषय, उनकी निर्माण-शैली और यहां तक कि उनकी पाठविधि आदि बहुत-सारी बातों में एकता है, जिससे उनका एक ही मूल उद्गम मानने में बहुत बाधा नहीं पड़ती है। पुराणों में आज जो वर्तमान वैभिन्न्य दिखाई देता है, उसका कारण उनके प्रवर्तक विभिन्न सम्प्रदाय के थे। पुराणों में इस परिवर्तन और परिवर्द्धन के कारण भी वही सम्प्रदाय थे। पुराणों के जो पांच लक्षण विष्णु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य के अनुसार ऊपर गिनाए गए हैं, ठीक उतनी बातों का प्रतिपादन उनमें नहीं होता है। उनमें बहुत सारे प्रसंग ऐसे भी हैं जो बहुत बाद की परिस्थितियों एवं बहुत बाद के सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं। ब्राह्म, शैव, वैष्णव और भागवत प्रभ ति सम्प्रदाय बहुत पुराने नहीं हैं; किन्तु 'ब्रह्मपुराण', 'शिवपुराण', 'विष्णुपुराण' और भागवत पुराणों का नामकरण उक्त सम्प्रदायों के ही कारण हुआ प्रतीत होता है।

पुराणों का निर्माण काल

लगभग ६०० ई० पू० से लेकर २०० ई० तक भारत की ये आठ शताब्दियां असाधारण बौद्धिक विकास और विचार-स्वातन.त्र्य की महत्त्वपूर्ण शताब्दियां रही हैं। जैन-बौद्ध और हिन्दू-दर्शनों के निर्माण का युग यही था। बौद्धों के 'जातक' और 'अवदान' जैसे लोकप्रिय गाथा-ग्रन्थों का निर्माण इसी युग में हुआ। 'रामायण' और 'महाभारत' के अन्तिम संस्कारणों का समय भी यही था। नन्द राजाओं और चन्द्रगुप्त मौर्य (३२१-२९६ ई० पू०) के कारण जैनधर्म खूब फला-फूला और उसका प्रभूत साहित्य लिखा गया। सम्राट अशोक (२९२-२३० ई० पू०) का आश्रय पाकर बौद्धधर्म और बौद्ध-साहित्य ने अभूतपूर्व प्रगति की। अनेक लोकप्रिय धर्म-ग्रन्थों, विचार-प्रधान दर्शन-ग्रन्थों और संस्कृत के काव्य-नाटकों के निर्माण का सूत्रपात इसी युग में हुआ।

६०० ई० पू० में ब्राह्मण धर्म की संकीर्णतावादी कर्मकाण्ड-प्रव त्ति के विरोध में जैन और बौद्धों ने जिस अलग धार्मिक परम्परा की प्रतिष्ठा की, उसके मूल में नास्तिकवाद था। जैन-बौद्धों की निराकार-भावना समाज में अधिक दिनों तक न टिक सकी। जनसाधारण उनके दुरूह ग्रन्थ पन्थ के किनाराकशी करने लगा। धारणा, ध्यान, समाधि, ग हत्याग, उपासना और दुःखवाद समाज के आकर्षण के लिए लोकप्रिय सिद्ध न होने के कारण समाज, ब्राह्मणधर्म की सुगम पद्धति की ओर सहसा ही मुड़ गया। भागवत-धर्म और शैव-धर्म ने निरीश्वरवादी जैनों और बौद्धों को सर्वथा निस्तेज बना दिया। यह सब पौराणिक धर्म की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप हुआ और लगभग यह स्थिति दूसरी शताब्दी ई० तक अक्षुण्ण बनी रही।

छठी शताब्दी ई० पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी के अन्त तक जैन-बौद्ध धर्मों की ब्राह्मणधर्म के साथ निरन्तर लड़ाइयां होती रहीं, किन्तु इस बीच ब्राह्मणधर्म ने अपना परिष्कार करने के बाद जो नया स्वरूप धारण किया, उसके सम्मुख उसके उक्त प्रतिद्वन्द्वी धर्म पराभूत हो गये। अपने प्रतिद्वन्द्वी धर्मों को परास्त कर ब्राह्मणधर्म तीसरी शताब्दी ईस्वी से निरन्तर उत्कर्ष की ओर अग्रसर होता गया और उसकी यह उत्कर्ष की स्थिति लगभग १२वीं शताब्दी तक अक्षुण्ण बनी रही। यही पुराणों के निर्माण और अन्तिम संस्करण का समय था।

पुराणों की रचना एक समय की नहीं है, लगभग श्रुतिकाल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक निरन्तर उनकी रचना, संक्षिप्त संस्करण, सम्पादन ओर संकलन होता गया। विद्वानों की राय है कि

गुप्त-शासन की सर्वथा अनुकूल परिस्थितियों को पाकर उस समय पुराणों का एक संस्करण हुआ। 'स्कन्दपुराण' के सम्बन्ध में विद्वानों की यहां तक धारणा है कि उसका नामकरण गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त के नाम से हुआ। 'वायु', 'भविष्यत्', 'विष्णु' और भागवत' पुराणों में गुप्तवंश का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त-युग में उनका संस्कार अवश्य हुआ।

डॉ० जयसवाल के मतानुसार कांचनका (राजस्थान) के अन्तिक शासकों-पुष्यमित्र और वसुमित्र-का समय ३६६ ई० ही पुराणों की रचना का समाप्ति-युग था। उनमें जो संशोधन-परिष्करण होते गये, उनकी अवधि पांचवीं शताब्दी के भी आगे तक पहुंचती है।

यद्यपि अपने मूल अर्थ में 'पुराण' शब्द 'वेद' की तरह एक व्यापक-विषय का सूचक है और हमें इस द ष्टि से यह भी मानना पड़ेगा कि 'वेदसंहिता' की भांति एक 'पुराण-संहिता' भी विद्यमान थी; जिसका वर्गीकरण वैदिक संहिताओं के वर्गीकरण के साथ ही उन्हीं 'व्यास' पदवी वाले महर्षियों ने किया, पुराणों के विवरण की पूर्वसीमा का जो उल्लेख वैदिक साहित्य तक में मिलता है, उसका लक्ष्य उसी 'पुराण संहिता' से है। कुछ प्रामाणिक उल्लेखों के आधार पर हम पुराण-साहित्य के निर्माण की पूर्व और उत्तर सीमाओं की जानकारी नीचे लिखे आधारों पर प्राप्त कर सकते हैं।

(१) आचार्य शंकर और कुमारिल भट्ट ने अपने ग्रन्थों में पुराणों की पर्याप्त चर्चाएं की हैं। कथाकार बाणभट्ट (७०० ई०) ने 'हर्षचरित' में स्पष्ट किया है कि उन्होंने अपने जन्म-स्थान में 'वायुपुराण' का पारायण सुना था। 'कादम्बरी' में भी उन्होंने इस व'ायुपुराण' का उल्लेख किया है। 'पुराणेषु वायुप्रलपितम्'।

(२) 'विष्णुपुराण' में मौर्य-साम्राज्य का, 'मत्स्यपुराण' में दक्षिणात्य आन्ध्र राजाओं का और 'वायुपुराण' में गुप्त-वंश का जो अविकल उल्लेख मिलता है, उनसे इन पुराणों के तत्कालीन अस्तित्व का सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है।

(३) 'महाभारत' में कतिपय पुराणों के उपाख्यानों का ज्यों-का-त्यों वर्णन मिलता है। 'महाभारत' या 'जयकथा' के प्रवक्ता लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूत पुराणों के पूर्ण पण्डित थे। शौनक ऋषि ने एक बार उनसे प्रार्थना की थी कि वे अपने पिता से पुराणों के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान को उन्हें सुनायें। ऋष्यश ंग का एक आख्यान 'पद्मपुराण' और 'महाभारत' दोनों में मिलता है। दोनों ग्रन्थों के आख्यानों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् डॉ० लूडर्स ने यह सिद्ध किया कि 'पद्मपुराण' का आख्यान प्राचीन है।

(४) कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' पुराणों के अस्तित्व से पर्याप्त प्रभावित जान पड़ता है। राजकुमारों के लिए पुराणों के ज्ञान की आवश्यकता, पुराणविद् को राज्याश्रय का अधिकार आदि बातों से ज्ञात होता है कि कौटिल्य पुराणों के उपयोगी ज्ञान के पारंगत विद्वान् थे।

(५) सूत्र-ग्रन्थों में एक ओर तो प्राचीनतम 'पुराण-संहिता' के अस्तित्व का पता चलता है और दूसरी ओर उनमें उपलब्ध पुराण-ग्रन्थों के उद्धरण मिलते हैं।

(६) उपनिषद्-ग्रन्थों में वेदों के साथ इतिहास-पुराण का भी उल्लेख किया गया है और उनको पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया गया है तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि इतिहास एवं पुराण का अस्तित्व, तब सर्वथा प थक् था।

इस प्रकार लगभग १२वीं शताब्दी ई० से लेकर मौर्यवंश (३७४-१६० ई० पू०), आन्ध्रवंश (२१२ ई० पू० से ३३८ ई० पू०), गुप्तवंश (२७५-५१० ई०), 'महाभारत' (५०० ई० पू०), अर्थशास्त्र (३०० ई० पू०), 'कल्पसूत्र' (७०० ई० पू०), उपनिषद् (१००० ई० पू०) और वैदिक संहिताओं (२५०० ई० पू०) तक पुराणों के प्राचीनतम और आधुनिक स्वरूपों की समर्थ चर्चाएं विद्यमान होने के कारण उनकी पूर्व-सीमा वैदिक युग और उत्तर-सीमा गुप्त-साम्राज्य तक निर्धारित की जा सकती है।

पुराणों के सम्बन्ध में पार्जिटर महोदय ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'एशियेण्ट इंडियन

हिस्टॉरिकल ट्रेडिशन्स'। यह पुस्तक उनके पुराण-साहित्य और भारतीय परम्पराओं के प्रति गम्भीर ज्ञान का परिचय देती है। इसमें उन्होंने पुराणों के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करने के साथ-साथ पुराणों की महत्ता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने वेदों को भी पुराणों की भांति विरुदावली कहा है। जिस प्रकार राजवंशों की विरुदावली पुराणों में वर्णित है, उसी प्रकार ऋषिवंशों की विरुदावली के परिचायक ग्रन्थ 'वेद' हैं।

अपने सन्तुलित एवं गम्भीर अध्ययन के आधार पर पार्जिटर महोदय का कथन है कि पुराण मूल रूप में ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों के बाद के नहीं हो सकते हैं। पुराणों में 'अग्निपुराण' सबसे प्राचीन है। 'अग्निपुराण' का समय इतिहासकारों ने चौथी शताब्दी या इससे पहले का बताया है। पुराण-ग्रन्थों की रचना के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक का मत है कि उनका समय ईस्वी सन् दूसरे शतक के बाद का कदाचित् नहीं हो सकता है।

'अग्निपुराण' की रचना के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। श्रीयुत सुशील कुमार दे के मतानुसार 'अग्निपुराण' का अलंकार प्रकरण, दण्डी और भामह के पश्चात् और 'ध्वन्यालोक' के कृतिकार श्री आनन्दवर्धन से पहले ईसा की नवम शताब्दी के लगभग रचा गया। श्री पी०वी० काणे साहब 'अग्निपुराण' को ७०० ई० पू० के बाद और उसके काव्य-शास्त्र विषयक अंश की रचना ६०० ई० के बाद की स्वीकार करते हैं। इन दोनों विद्वानों की स्थापनाओं का विधिवत् खण्डन करके श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने अपना सप्रमाण मंतव्य दिया है कि 'अग्निपुराण' के काव्य-प्रकरण का ध्यान देकर अध्ययन करने से यह निर्विवाद विदित हो सकता है कि वह वर्णन भामह, दण्डी, उद्भट और ध्वनिकार आदि सभी प्राचीन साहित्याचार्यों से विलक्षण है और वह काव्य के विकास-क्रम के आधार पर 'नाट्यशास्त्र' के पश्चात् और भामहादि के पूर्व का मध्यकालीन रूप है।

डॉ० हजारा ने पुराण-साहित्य पर खोजपूर्ण कार्य किया है और उनके ऐतिहासिक स्तर पर गम्भीर प्रकाश डाला है। उन्होंने कालक्रम से प्राचीनतम महापुराणों में 'मार्कण्डेय', 'ब्रह्माण्ड', 'विष्णु', 'मत्स्य', 'भागवत', एवं 'कूर्म' की गणना की है।

पहले दो पुराणों को उन्होंने 'विष्णुपुराण' से पहले का रचा माना है। शेष पुराणों में 'विष्णु' ४०० ई०। 'वायु' ५०० ई०। 'भागवत' ६००-७०० ई० और 'कूर्म' ७०० ई० में रचे गये। उन्होंने 'हरिवंश' का रचनाकाल भी ४०० ई० सिद्ध किया है। उनके मतानुसार 'अग्निपुराण' की रचना यद्यपि ८०० ई० में हुई, किन्तु उसकी कुछ सामग्री इससे पहले की और कुछ इससे बाद की है। यद्यपि मूल 'नारदीय पुराण', संप्रति अप्राप्य है, तथापि प्रचलित 'नारदीय पुराण' की रचना दसवीं शताब्दी में हो चुकी थी और बाद में उसका कलेवर प्रक्षेपों से बढ़ता गया। इसी प्रकार 'ब्रह्मपुराण' की कुछ सामग्री बहुत बाद की होते हुए भी उसकी रचना दसवीं शताब्दी में हो चुकी थी। 'स्कन्द-पुराण' की कुछ सामग्री आठवीं शताब्दी में और अधिकांश उसके बाद निर्मित हुई। 'गरुड़पुराण' की रचना दसवीं शताब्दी में हुई। इसी प्रकार 'पदमपुराण' की रचना १२००-१५०० ई० के बीच हुई। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' की रचना यद्यपि ७०० ई० पू० हो चुकी थी तथापि उसका वर्तमान रूप सोलहवीं शताब्दी ई० का है।

'विष्णुधर्मोत्तर-पुराण' का संभावित काल बूलर ने सातवीं शताब्दी बताया है, जो कि काश्मीर में रचा गया। इसी प्रकार 'न सिंहपुराण' की रचना ४००-५०० ई० के बीच हुई। 'ब्रह्मपुराण' की एक हस्तलिखित प्रति १६४६ वि० की उपलब्ध है। इस द ष्टि से इसका रचनाकाल कम-से-कम १४वीं-१५वीं शताब्दी में होना चाहिए।

पुराण-ग्रन्थों की रचना के सम्बन्ध में इतनी ही सूचनाएं उपलब्ध हैं। अन्यत्र भी पुराणों के ऐतिहासिक स्तर पर कुछ विचार-सामग्री देखने को मिलती है; किन्तु उनमें कल्पना की प्रचुरता है।